अन्तर्राष्ट्रीय वेदान्त मिशन की मासिक ई - पत्रिका

वेदान्त पीयूष

वर्ष २२ मई - २०२२ प्रकाशन - ०५

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

वेदान्त पीयूष

मई २०२२

प्रकाशक

आन्तराष्ट्रिय वेदान्त आश्रम,

ई - २९४८, सुदामा नगर

इन्दौर - ४५२००९

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

ॐ
सदाशिवसमारम्भाम्
शंकराचार्य मध्यमाम्
अस्मदाचार्य पर्यन्ताम्
वन्दे गुरु परम्पराम्

वेदान्त पीयूष

विषय सूचि

1,	श्लोक	07
2.	पू. गुरुजी का संदेश	08
3.	वेदान्त लेख	14
4.	लघु वाक्यवृत्ति	22
5.	गीता चिन्तन	28
6.	श्री लक्ष्मण चरित्र	40
7.	जीवन्मुक्त	46
8.	कथा	52
9.	मिशन-आश्रम समाचार	56
10.	आगामी कार्यक्रम	65
11.	इण्टरनेट समाचार	66
12	लिन्क	68

मई 2022

यथाकाशो हृषीकेशो
नानोपाधिगतो विभुः।
तद्भेदाद् भिन्नवद्भाति
तन्नाशे केवलो भवेत्॥

(आत्मबोध श्लोक : 10)

जैसे सर्वव्यापक आकाश भिन्न-भिन्न उपाधियोंके कारण अनेक प्रतीत होता है, तथा उपाधियोंके नष्ट होने पर एक हो जाता है, उसी तरह भिन्न भिन्न उपाधियों के कारण अनेक प्रतीत होनेवाली एक ही सर्वव्यापक सत्ता उपाधियों के बाधित होने पर एक हो जाती है।

पूज्य गुरुजी का सन्देश

संसारी, साधक और सिद्ध

समस्त शास्त्र का यह उद्घोष है कि हम अपने आपमें दिव्य, ब्रह्मस्वरूप है। अपनी ब्रह्मस्वरूपता में जगने से ही मुक्ति होती है। अज्ञान में रहते हुए हर जीव पहले संसारी, अपने बारे में संकुचिता की धारणा से युक्त होता है। मुक्ति तक की यात्रा ऐसे संसारी से आरम्भ करते हुए सिद्ध बनने की यात्रा है। इस यात्रा का प्रथम पड़ाव एक साधक का होता है।

संसारी का लक्ष्य अपनी कमियों को दूर करने के लिए बाह्यवस्तु की सिद्धि करना होता है। वह अज्ञानवश अपने तथा जगत के बारे में की गई कल्पना को सत्य मानकर, स्वयं को छोटा समझकर सदैव द्वैत में जीता है, उसका परिणाम बहिर्मुखता, पराधीनता व दुःखान्त होता है। बाह्य लक्ष्य सदैव साध्य-साधन सापेक्ष होने से नश्वर, अस्थायी होता है।

ससारी, साधक और सिद्ध

साधक का लक्ष्य किसी बाहरी नश्वर जगत से सम्बद्ध नहीं, किन्तु प्रतिक्षण निरपेक्षता, गरिमा से युक्त होकर जीना है। उसके लिए प्रकृति अर्थात् स्वधर्मानुरूप क्षेत्र का निर्धारण करके कर्म करना है। कर्मक्षेत्र में अपनी पूर्णस्वरूपता की श्रद्धा की दृढ़ करके, कर्म के माध्यम से पूर्णता की श्रद्धा की अभिव्यक्ति करना है। अपने आपको ईश्वर के अंश व सेवक जानते हुए, गरिमा, उत्साह से जीते है। उससे पराधीनता व दीनता के संस्कार से मुक्त होते जाते है। वह जगकर जीने में समर्थ होता है। अनित्य की अनित्यता को भी देखता है। उससे ओर भी निरपेक्षता का समावेश होता जाता है। वह बाहरी दुनिया में अपेक्षा से नहीं किन्तु उसकी यथावत स्वीकृति से जाता है। अपेक्षावान बाहर से सुख की सम्भावना देखकर ही चलता है। स्वीकृति तब हो पाती है कि जब यह ज्ञात होता है कि तृप्ति बाहर से नहीं, किन्तु आत्मज्ञान से हृदयाकांक्षा की पूर्ति होती है। इस ज्ञान के प्रति पूर्णश्रद्धा युक्त होने पर प्रतिक्षण दीनता से

संसारी, साधक और सिद्ध

रहित निरपेक्षता, प्रसन्नता व प्रेम से युक्त होकर जीता है। अपनी पूर्णता की श्रद्धा की दृढ़ता ही साध्य-साधन जगत की सर्वोत्कृष्ट सिद्धि है। जिसमें यह विश्वास हो जाएं कि हम अपने आपमें दिव्य सत्ता है। अतः अपनी पूर्णस्वरूपता की श्रद्धा को दृढ़ करना-यही साधक का प्रथम लक्ष्य होता है। पूर्ण स्वरूपता की श्रद्धा उसे विविध राग-द्वेष आसक्ति आदि से मुक्त करता है। निरपेक्षता व उत्साहपूर्ण जीवन जीने लगता है। तब शान्त, विचारशील, अन्तर्मुख, शास्त्र के रहस्यों को सूक्ष्मता व गहराई से समझने में सक्षम होता है। उसकी साध्य-साधन के जगत में संसारी से साधक तक की यात्रा सिद्ध हो गई। उसके उपरान्त कर्मक्षेत्र में कुछ भी प्राप्तव्य नहीं क्योंकि नास्ति अकृतः कृतेन। अब कर्म से संन्यस्त होकर ज्ञान के प्रति पूर्णतः समर्पित होता है। साध्य-साधन के जगत से मुक्ति ही संन्यास है।

'संसारी का लक्ष्य बाह्यविषयक सिद्धि करना होता है। साधक का लक्ष्म पूर्णता की श्रद्धा की दृढ़ता है।'

संसारी, साधक और सिद्ध

ऐसे संन्यस्त मन से ज्ञान में प्रवेश होता है, जहां श्रद्धा का पर्यवसान ज्ञान व विज्ञान में होना है। उसके लिए अब वेदान्त के ज्ञान को हृदयान्वित करने की दिशा में यात्रा होनी है। इस लक्ष्य में कोई साध-साधन की अपेक्षा नहीं है। अन्ततः ज्ञान को हृदयान्वित करके वह सिद्ध हो जाता है। सिद्ध स्वयं ब्रह्मस्वरूप है। ब्रह्म साध्य-साधन निरपेक्ष होने से अब उनका कोई लक्ष्य नहीं रहता है। वह समस्त अज्ञान व तज्जनित बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

मया ततमिदं सर्वम् ....

वेदान्त लेख
अहम् ब्रह्मास्मि

गहना कर्मणो गतिः

भगवान गीता में अर्जुन को बताते हैं कि कर्मणोऽपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः। अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।। कर्म का रहस्य बहुत गहन है। कर्म, अकर्म और विकर्म के बारे में अवश्य जानना चाहिए। संसारी से सिद्ध तक, अज्ञानी से जीवन्मुक्त की यात्रा में यह महत्वपूर्ण पड़ाव है। मनुष्य एक मात्र ऐसा प्राणी है; जिसके पास कर्म का सामर्थ्य व स्वतंत्रता है। अन्य सब योनि भोगयोनि कही जाती है। यद्यपि वे सब जीवनपर्यन्त चेष्टा करते है। अपने सुख-सुरक्षा, भोगादि की व्यवस्था, आवश्यकता की पूर्ति आदि के लिए अत्यन्त परिश्रम, चेष्टाएं करते है। किन्तु यह सब उनके संस्कार ही करवाते हैं। संस्कारों के

गहना कर्मणो गतिः

अधीन की गई चेष्टाएं कर्म की श्रेणी में नहीं आती है। जैसे किसी मोगाइल वा काम्प्यु में प्रोग्रामिंग करी हो, वैसे ही यह प्रोग्रामिंग है।

'मनुष्यमात्र को कर्म का सामर्थ्य व स्वतंत्रता होने से कर्मयोनि है। अन्य सब भोगयोनि है।'

उसी प्रकार मनुष्य भी अपनी सुख-सुरक्षा, भोग, एवं आत्मसंतुष्टि के लिए अनेकानेक संकल्प, इच्छाएं तथा उसके लिए अनेकानेक चेष्टाएं करता है। उसके लिए सुख-सुरक्षा का स्रोत उनके संस्कार, वासना और महत्वबुद्धि के अनुरूप निश्चय होते है। यह निश्चय भी पशु आदि की तरह प्रोग्रामिंग पर ही आधारित होने से तत्प्रेरित चेष्टाएं कर्म की श्रेणी में नहीं आते है, किन्तु यह क्रिया वा विकर्म है। उससे क्षणिक रूप से अहं की संतुष्टि और अभ्युदय की सिद्धि भी होती है। किन्तु यह सब स्थूल धरातल की सतही उपलब्धियां होती है। मन की गहराई में, मूलरूप से कोई

गहना कर्मणो गतिः

परिवर्तन वा आन्तरिक विकास नहीं हो पाता है। ऐसा लगता है कि मानों रथ दलदल में फंसा है। विकर्म में हमारा जीवनरथ देखादेखी में अविचारपूर्वक अर्जित संस्कार व वासनाओं के द्वारा संचालित होता है। संस्कार, वासना सारथि बने है। अर्थात् कर्म की कोई स्वतंत्रता नहीं है। हम वासना के अधीन होकर जी तो सकते हैं, किन्तु उससे न करने में स्वतंत्र नहीं है। उसमें हम विवशता से प्रवाहित होते है। इस तरह के जीवन से जैसे पैदा हुए थे, वैसे ही मरते है और संकुचित जीव बने रहकर जन्म-जन्मान्तर तक संसार की अन्तहीन यात्रा करते है।

अज्ञान में रहते हुए अधिकतर मनुष्यों की यही कहानी होती है कि उसकी चेष्टाएं विकर्ममात्र होती है। भगवत्कृपा से यह मनुष्यदेह प्राप्त है। यही एक मात्र योनि कर्मयोनि है, जिसमें कर्म की स्वतंत्रता व सामर्थ्य रूप उपहार प्राप्त है। अन्य

गहना कर्मणो गतिः

सब भोगयोनियां है, उसमें विविध भोग और अनुभूतियां प्राप्त करके अहं की संतुष्टि की प्रधानता है। जीवन की सार्थकता तब ही होती है कि जब हम कर्म की स्वतंत्रता को धारण कर सके, और उसका लाभ लेते हुए मनुष्य जीवन के सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य की सिद्धि कर सके। अतः यह जानना आवश्यक है कि कर्म किसे बोलते हैं? कर्म के बारे में सही समझ होने पर, क्रिया को कर्म बना सकते है। उसीसे कर्मक्षेत्र में रहते रहते मुक्ति का अनुभव होने लगता है।

'कर्म बाह्य और आन्तरिक परिवर्तन का एक मात्र साधन है।'

कर्म भी सजगतापूर्ण, संकल्पपूर्वक चेष्टा है, उससे भी अभ्युदय और विविध अनुभूतियां, बाह्य उपलब्धियां होती है। किन्तु कर्म इतना मात्र नहीं है, न ही उसका यह मुख्य प्रयोजन है। मन के गहरे संस्कार, प्रेरणा, गुण आदि में परिवर्तन कर पाएं यही कर्म की विशिष्टता

गहना कर्मणो गतिः

है। कर्म हमारी प्रोग्रामिंग के परिवर्तन का साधन है। आज विकर्म करने हेतु विवश है, क्योंकि जीवन स्वकेंद्रिता, अहं की संतुष्टि से प्रेरित स्वार्थादियुक्त है। इससे हर्ष-शोकादि की पीडाएं, राग-द्वेषपूर्ण, सतत पराधीनता का संतप्त जीवन होता है। ईश्वर की कृपा व पुण्यप्रताप से सत्संगादि से यह रियलाइज हुआ कि ऐसा संतापयुक्त जीवन के पीछे अपने बारे में दीनता-हीनता व अपूर्णता की धारणा विद्यमान है। उसके उपरान्त विविध ध ारणा पर आश्रित, संस्कारित जीवन जी रहे है। तब इसे परिवर्तित करने का संकल्प व प्रेरणा होती है। यह रजोगुण से सत्वगुण की ओर यात्रा है। प्रारम्भ में बाह्य परिवर्तन करके कर्म का सामर्थ्य जगता है, फिर अपने अन्दर मूलभूत गुणात्मक परिवर्तन की इच्छा, संकल्पपूर्वक चेष्टा को कर्म बोलते है। यह प्रकृति, गुणात्मक परिवर्तन का साधन है।

गहना कर्मणो गतिः

क्रिया में वासनानुरूप प्रवाहित होते है। किन्तु कर्म में स्वभाव से भिन्न संकल्प कर सकते है। यह नदी की धारा को विपरीत दिशा में ले जाने जैसा है। इस धरातल पर परिवर्तन के लिए तीव्र संकल्पपूर्वक चेष्टा करनी पडेगी। चित्तशुद्धि स्वभाव व गुणात्मक परिवर्तन को बोलते है। जो कि स्वकेन्द्रिता से मुक्त, उत्साह, निरपेक्षता से युक्त करते है। पुरानी आदते त्यागकर, विचारपूर्वक औचित्य का निश्चय करके नए का समावेश कर सकते है। यह कार्य संकल्पपूर्वक, उस दिशा में पुरुषार्थ करने से होता है। जब स्वभावपरिवर्तन का संकल्प होता है, तब कर्म के वास्तविक अधिकारी बनते है। कर्म में हम अपने रथ के संचालक बनते है, यह मुक्ति की अनुभूति दिलाता है। संकल्पपूर्वक, औचित्य का निश्चय कर, पूर्ण जाग्रति के साथ कर्म कर सकते है। उससे सतत आन्तरिक, सूक्ष्म, गुणात्मक परिवर्तन होता जाता है।

गहना कर्मणो गतिः

वासना-संस्कार व आदतों के सिकंजे से मुक्त हुआ मन भूत-भविष्य से मुक्त, वर्तमान में पूर्ण उपलब्ध, सजग, सूक्ष्म, विचारशील होता है। ऐसा मन कर्मजनित उपलब्धियां व कर्मक्षेत्र की संकुचिता को देख पाता है। यह दीखता है कि कर्मज उपलब्धि से कोई फर्क नहीं पडता, अतः यह हमारा लक्ष्य नहीं है। अब सूक्ष्म रहस्यों को, सत्य को समझना चाहते है; तब कर्मसंन्यास होता है।

पूर्णतया कर्मसंन्यास मन की निर्मलता की पराकाष्ठा है। उसमें क्रियाएं चल रही है किन्तु अन्तःबाह्य परिवर्तन की चेष्टा की समाप्ति है-यह अकर्म है। ऐसे संन्यस्त मन से गुरु-शास्त्रप्रमाण का आश्रय लेकर सत्य का ज्ञान प्राप्त करके अपनी ब्रह्मस्वरूपता में जग जाता है। उन्होंने ही कर्म रूप साधन का सकारात्मक प्रयोग करके उससे सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य की सिद्धि करके जीवन सार्थक कर लिया।

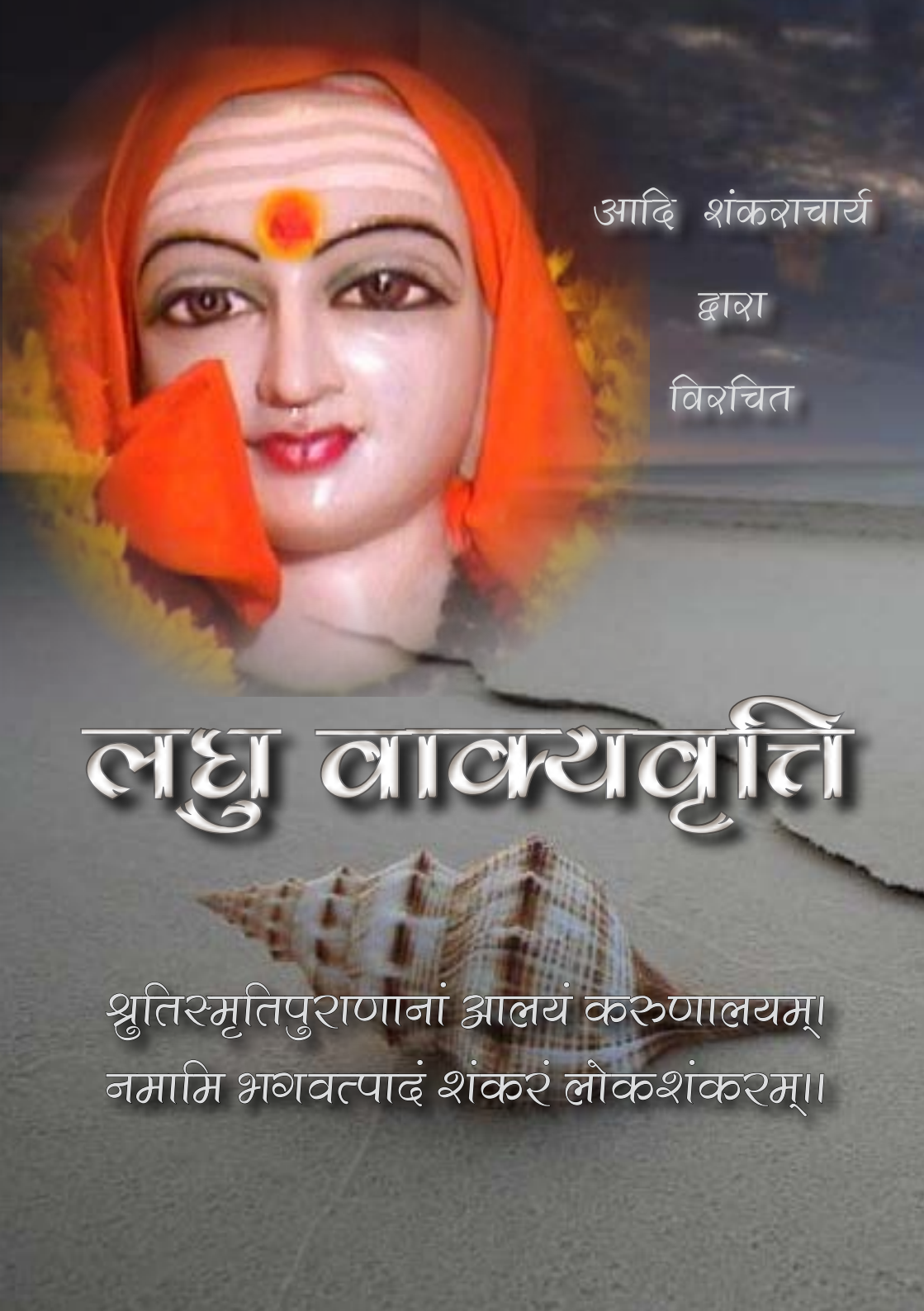

आदि शंकराचार्य

द्वारा

विरचित

लघु वाक्यवृत्ति

श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।

— श्लोक : ५ —

जागरेऽपि धियस्तूष्णीं
भावशुद्धेन भासयेत्।
धीव्यापाराश्च तद्भास्याः
चिदाभासेन संयुताः।।

जाग्रत में भी शान्त बुद्धि को यह चेतनता प्रकाशित करती है, चिदाभास के सारे व्यापार शुद्ध चेतनता के द्वारा ही प्रकाशित होते हैं।

लघु वाक्यवृत्ति

पूर्व श्लोक में आचार्य ने बताया कि जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीनों अवस्थाएं चिदाभास की है।

'जाग्रत अवथा के अन्तर्गत के समस्त खेल बोधाभास के ही है।'

सर्व प्रथम जाग्रत अवस्था का परिचय यहां दे रहे हैं। जाग्रत अवस्था वह है कि जिसमें हम श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा शब्दादि विषयों को स्पष्ट रूप से ग्रहण कर पा रहे हैं। जाग्रत अवस्था हमारी पूर्ण विकसित अवस्था है। वहां प्रत्येक विषय का अत्यन्त स्पष्ट ज्ञान होता है, तथा बुद्धि के द्वारा विचारपूर्वक जगत के प्रति पूर्ण सचेत होकर प्रतिक्रिया भी कर पाते हैं, क्योंकि जाग्रत अवस्था में

लघु वाक्यवृत्ति

हमारा तादात्म्य स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीर के साथ होता है। स्थूलशरीर के माध्यम से सूक्ष्मशरीर के अन्तर्गत के ज्ञान, भावना, प्रतिक्रिया आदि अर्जित होते हैं, तथा अभिव्यक्त भी होते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु जाग्रत अवस्था में आने पर स्वप्न और सुषुप्ति की भी प्रत्यभिज्ञा अर्थात् स्मृति होती है।

जाग्रतमें अपने स्थूलशरीर से तादात्म्य करते हैं। अतः साधारणतः अपनी अस्मिता स्थूलशरीर के माध्यम से ही जानते हैं। जाग्रत अवस्था की अन्य अवस्थाओं से यह ही विलक्षणता होती है। मानों कि हमने स्थूलशरीर रूपी वेश को धारण किया हुआ है, जैसे एक नट नाटकमंच पर आकर अपनी भूमिका के अनुरूप कोई न कोई चोला वा वेश धारण करता है, ठीक वैसे ही। जब इस स्थूलशरीर रूपी चोले को धारण किया है, तब हम 'विश्व' नाम से जाने जाते हैं।

लघु वाक्यवृत्ति

इस अवस्था में हम इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि करणों के द्वारा विविध कार्यकलाप करते है, अथवा कभी शान्त होकर बैठे हैं। कभी मन में विक्षेप है तो कभी मन शान्त, सूक्ष्म विचारशील है। इन सब की अभिव्यक्तियां जो स्थूल शरीर के माध्यम से होती है। यह स्थूल और सूक्ष्म शरीर (इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण से युक्त) पंच महाभूत के सूक्ष्म अंश का बना हुआ जड़ है। किन्तु जड़ होते हुए भी चिदाभास से युक्त होने पर अर्थात् अन्तःकरण में आभासित चेतना की वजह से अनुगृहीत होकर जीवन्त हो उठता है और विविध कार्य कलाप करने में सक्षम होता है। उन सब को प्रकाशित करने वाली शुद्ध चेतना ही है, जो असंग, निरपेक्ष, साक्षी रूप से उन सब को प्रकाशित करती है।

गीता मननम्

गीता अध्याय : 15

पुरुषोत्तम योग

पुरुषोत्तम योग

गीता के १५ वें अध्याय का नाम पुरुषोत्तम योग है। इस अध्याय में २० श्लोक है। जीवन के सत्य को जानने के लिए, धर्ममय जीवन जीने के लिए यह अध्याय सम्पूर्ण शास्त्र के समान है। अतः उसके पाठ का भी महत्व बताया जाता है। जीवन के विविध दैवी मूल्य, जीव, जगत, ईश्वर का ज्ञान, आत्म-अनात्मा, संसार का स्वरूप आदि सबका ज्ञान इस अध्याय में दिया गया है। इस ज्ञान का प्रयोजन सत्य में जगकर जीना ही है। जगकर जीने के लिए ही दृष्ट दुनिया से विचार आरम्भ किया जाता है। यात्रा वहीं से आरम्भ की जाती है, जहां हम खड़े है। तत्वज्ञान सदैव दृष्ट का अच्छी तरह से ज्ञान प्राप्त करना है।

पुरुषोत्तम योग

इस जगत को एक वृक्ष की तरह बताने से चर्चा का आरम्भ किया जा रहा है। अज्ञान की विनम्रता से यात्रा का आरम्भ करते हैं। हमें ईश्वर के बारे में आज नहीं पता है, उपासना में यह धारणा होती है कि हमें भगवान के बारे में, सत्य के बारे में, अपने बारे में पता है। उसके उपरान्त साधना का आश्रय लिया जाता है। उसका प्रयोजन श्रद्धा से युक्त होकर निश्चिंत होना है। अपने बारे में चिन्ता ही ज्ञान में बाधक होती है। उनके अस्तित्व के बारे में श्रद्धा की दृढ़ता निश्चिन्तता लाती है।

इस अध्याय में कोई उपासना नहीं। विनम्रता से जगत को खुले मन से समझना चाहते है, आज तक कल्पना में जी रहे थे। तत्वज्ञान के लिए वह ही पात्र होता है, जो अपने अन्दर विनम्रता से युक्त होता है कि हमें न अपने बारे में पता है, न जगत के बारे में तथा न ईश्वर के बारे में पता है।

पुरुषोत्तम योग

यह रियलाइजेशन ही इस अध्याय में प्रवेश दिलवाता है। जब गहराई तक ऐसी विनम्रता होती है, तब ही दृष्ट का पुनः चिन्तन होता है। उसका शोधन करते है, जो भी दृष्ट वह वस्तुतः अनित्य ही होता है, अनित्य को कितना भी प्राप्त कर लें, इससे तृप्ति नहीं होती – यह स्वयं का अनुभवजन्य निश्चय होना चाहिए। यद्यपि सब का व्यावहारिक स्थान

'दृश्य जगत अनित्य, नश्वर है, उससे कभी भी स्थायी, पूर्णता व सुरक्षा प्राप्त नहीं होती।'

है, निष्प्रयोजन नहीं है; किन्तु अनित्य है। अतः कभी भी तृप्त का हेतु नहीं बनता है। अध्याय के आरम्भ में अपने वर्तमान धरातल पर प्राप्त अनुभूति का अनुमोदन होता है, यद्यपि सब नश्वर है, उससे स्थायी पूर्णता व सुरक्षा नहीं, तब भी उसे खुले मन से देखकर, शिक्षा प्राप्त करके उसकी गहराई में प्रवेश करें। इसके मूल में जाने के लिए ही पहले श्लोक में उसे

पुरुषोत्तम योग

वृक्ष की तरह बताते हुए कहा कि, जहां खड़े है, वहीं उसके मूल में जाएं। क्योंकि मूल उर्ध्व है, सारभूत सत्य है। उसे चर्मचक्षु से नहीं, ज्ञानचक्षु से ही देखा जाता है।

शाखाए सुन्दर, उपयोगी, तथा अनेकों चीजों की सूचक है। शाखाएं ईश्वर की भाषा एवं भावना है। दृष्ट दुनिया को खुले मन से देखें तो शिक्षा प्राप्त होती है। अतः दृष्ट दुनिया की भाषा समझें, यह परिवर्तनशील दुनिया स्वतः बता रही है कि हम अनित्य है। कहीं से उत्पन्न होते है, टिकते है और चले जाते है। वह जहां से उत्पन्न और जहां चली जाती है; उस मूल की तरफ ध्यान दें। एवं पहले श्लोक में दिशा प्रदान की कि जगत को किस नजरों से देखें। यह ज्ञानचक्षु है। हर चीज की गहराई में जाकर देखें। जहां विचार, पीडाएं आदि अनुभव होते है, अज्ञान की विनम्रता से उसकी भी गहराई में

पुरुषोत्तम योग

जाने का स्वभाव बनाएं। जानने का अभिमान ही इसमें बाधक बनता है। ज्ञान के लिए शास्त्र ही प्रमाण है अतः कहा 'प्राहु'। जो तृप्त, कृतार्थ है, ऐसे वेदवित् की बाते ही प्रामाणिक है। वे बताते है कि जगत नश्वर परिवर्तनशील है। नश्वर को नश्वर देख पाना–यह ही ज्ञान है। नश्वर को नश्वर जानकर उसीमें टिके रहे, उससे पलायन करने के बजाय उसे समझते है। सब को अनित्य जानकर जीते है, उससे

'संसार रूपी वृक्ष के रहस्य को जो समग्रता से जानता है, वही कृतार्थ हैं।'

ही पूरे विश्व को मायामय, स्वप्न बना देते है। तब भी जीते है। इससे निरपेक्ष, निरस्वार्थ, परिग्रह से मुक्त, उदात्त, सेवाभाव से युक्त होते जाएंगे। और यहां रहते रहते अन्तर्मुख होकर मूल में जाने का प्रयास करेंगे। चिन्तनादि की प्रकृति बन जाएगी। इस वृक्ष को जानना मात्र है। मूल में जाने का अर्थ दृष्ट की अनित्यता

पुरुषोत्तम योग

दीखने लगे। उसे पूर्ण संवेदना से युक्त होकर देखना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

जितनी संवेदना उतना ही गहराई में जाने का सामर्थ्य होगा। संवेदनशीलता ही अपरोक्षानुभूति है। निरपेक्ष होकर ही संवेदनशील हुआ जाता है, इस प्रकार जो दृष्टा-दृश्य, व्यक्त-अव्यक्त, मूल/कारण-कार्य को यथावत् देखता है, वह ही वेदवित् है। उनमें नित्य की अवेरनेस है, अनित्य का भी ज्ञान है। उसके उपरान्त उसकी शाखाएं देखें। यह शाखाएं हमारे कर्म के अनुरूप उपर-नीचे फैली हुई है। अर्थात् कर्म में इतना सामर्थ्य है कि वह उर्ध्व वा अधो की तरफ ले जा सकता है। वह ही शाखाओं को विस्तार देता है। हम ही अपने कर्मो के द्वारा शाखाओं का उपर-नीचे विस्तार कर सकते है। हमारे संकल्प व कर्म से ही सृष्टि होती है। किन्तु कर्म का सब से अच्छा तरीका विवेकयुक्त, असंगता से करना है; न कि चिन्ता और आसक्ति

पुरुषोत्तम योग

से युक्त होकर। असंगता से जीना यह कर्म के क्षेत्र से, इस जगत से शिक्षा है।

'असंगता से जीने से कर्म में दक्षता के साथ साथ, सूक्ष्मता, संवेदनशीलता और निरपेक्षता प्राप्त होती है।'

इस प्रकार से जीने के दो लाभ होते है १. संसारी लाभ कि दक्षता सतत बढ़ती जाती है, कर्म अच्छा व निश्चिंतता से सच्ची भावना , सजगता और संवेदना से युक्त होकर होता है। दूसरा उससे ही सतत गहराई में जा पाते है। संसार में रहकर भी संसारवृक्ष का छेदन करने का यही तरीका है। इस एटि से जीएं कि यह ही सब कुछ नहीं, जो है उसे सुन्दर भी बना सकते है। कितना भी अनुकुल वा धर्ममय हो जाएं तब भी निरपेक्ष रहे। हम प्रतिकुलता और अनुकुलता दोनों लाने में समर्थ है। किन्तु अनुकुलता कितनी भी हो जाएं, उससे यह जानते हुए अप्रभावित रहे कि उससे कृतार्थता नहीं होती। जिसकी कृतार्थता बाह्य अनित्य जगत पर निर्भर है; वह ही संसारी

पुरुषोत्तम योग

है। जो अनुकुलता में भी अछूता रहकर विवेकी बना रहे–वही जिज्ञासु है। असंगता से आशय अनुकुलता–प्रतिकुलता आदि रूप विविध द्वन्द्वों में समत्व से युक्त रहना है। क्योंकि अपनी दृष्टि और प्राथमिकता कुछ और है। यद्यपि संसारी चीजों के प्रति संवेदना तो भी प्राथमिकता किसी अन्य चीज की है। अतः ऐसी सकारात्मक असंगता, जहां पलायन नहीं। कुरुक्षेत्र में रहते हुए असंग हो, यह हमारी सोच पर आश्रित है उसे स्वप्नवत् जानने से असंग होते है, प्रयास से नहीं। निर्मानमोह, असंगता आदि मूल्यों का प्रयोजन ज्ञान के लिए पात्र बनाना है। क्षर–अक्षर पुरुष में संदेश यह कि दृष्ट को अनित्य जानते है, क्षर है, पुरुष है अतः पलायन नहीं। यह एक दिव्य, सुन्दर किन्तु परिवर्तनशीलता का आयाम है। यह कार्यरूपा है। उसका जो कारण है; वह अक्षर पुरुष है।

पुरुषोत्तम योग

जगत का कारण ऐसे दिव्य परिपूर्ण ईश्वर हैं। उनकी वजह से ही इस जगत रूप क्षर पुरुष की सुन्दरता है। वे ही इसके मूल में अर्थात् ऊर्ध्वरूप है। जगत सुन्दर है, किन्तु उसके सृष्टा – अनन्त ज्ञान, भावना आदि की वजह से युक्त होने से दिव्य है। यह चिन्तन के विषय है, कल्पना के नहीं। उनका संकल्प ही बीज है।

'सृष्टि को मिथ्या जानने पर सृष्टा के ज्ञान का द्वार उद्घाटित होता है।'

किन्तु उसे और ध्यान से देखते जाएं तो ईश्वर उपास्य, वन्दनीय और उतने ही सत्य है, जितनी यह दुनिया सत्य है। किन्तु महत्वपूर्ण एक और ज्ञान है। कार्य का कार्यत्व, कारण की वजह से है और कारण का कारणत्व इस कार्य की वजह से है। अर्थात् कारण–कार्य सापेक्ष है। सापेक्ष अस्तित्व जहां पर भी होता है, वह अनित्य, मिथ्या की श्रेणी में आता है,

पुरुषोत्तम योग

स्थायी और सत्य नहीं है। कार्य का कार्यत्व और कारण का कारणत्व सापेक्ष, अन्योन्य आश्रित है।

कार्य को कार्य समझना ही जगत को अनित्य देखना है। ईश्वर रूपा कारण को देखना है। ईश्वर-अभिमुख होने पर कारणत्व देखते है। यदि यथार्थ देखते है तो यह ही ईश्वर रूप कारण और यह जगत रूप कार्य दोनों सापेक्ष है। अतः ज्ञान यह बता रहा है कि जगत की सच्चाई, परं सत्य है। वह कार्यत्वादि से रहित है। क्षर-अक्षर अपने सन्दर्भ में देखें। परिचय जो भी है, उसे क्षर की तरह देखते है। ततः यह सब कार्य संकल्प से, अतः हम ही इस शरीर में ईश्वर है। इन सब की सच्चाई पुरुषोत्तम है। हम ऐसी सत्ता है; जो न कार्य है और न ही कारण है। कार्य-कारणत्व के निषेध से अर्थात् कार्य से तादात्म्य से मुक्त होकर और कारणत्व के भी अभिमान से मुक्त हम निरपेक्ष हैं। कार्य-कारण के

पुरुषोत्तम योग

सापेक्ष अस्तित्व का रियलाइजेशन होना ही उसका निषेध है। सापेक्ष ही अध्यारोप है, तथा जो निरपेक्ष है, वही अधिष्ठान है। ज्ञान का प्रमाण ईश्वर को कार्य कारण से युक्त देखना नहीं किन्तु स्वयं कार्यत्व-कारणत्व के निषेध में है। मैं की अपरोक्षानुभूति, संवेदना जो कि न कार्य और न कारण है। इस प्रकार इस अध्याय में क्षर, अक्षर अर्थात् जीव, जगत और ईश्वर के तत्त्वरूप पुरुषोत्तम के बारे में

> 'क्षर और अक्षर से परे पुरुषोत्तम को जानने से ही कृतार्थता होती है।'

बताया। इस रहस्यमय ज्ञान को प्राप्त करके संसार से मुक्त, कृतकृत्य हुआ जाता है।

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)

श्री लक्ष्मण चरित्र

— १८ —

बन्दउं लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका॥

श्री लक्ष्मण चरित्र

श्रीराम के साथ वनवास में चौदह वर्ष तक श्रीलक्ष्मणजी द्वारा की जाने वाली प्रभु की सेवा एक महाकाव्य है, जिसमें अकेले लक्ष्मण ही विविध रसों को साकार करते हुए दिखाई देते हैं। वनपथ में चलते हुए अपने आराध्य प्रभु और वन्दनीया सीतामाता की प्यास की अनुभूति पहले उन्हें होती है और स्वतः अपनी ओर से आग्रहपूर्वक जल लेने के लिए चल पड़ते हैं। स्वाभाविक ही था कि इस अनन्य अनुरागी के आगमन में थोड़ा विलम्ब भी विदेहजा को व्याकुल बना देता है। वे अपने मन की चिन्ता को राघव से सुनाए बगैर नहीं रह पाती हैं। उन्हें भय

श्री लक्ष्मण चरित्र

लगता है कि ननहें लक्ष्मण वन में मार्ग न भूल गए हों। वे रामभद्र से अनुरोध करती हैं कि वे रुककर लक्ष्मण की प्रतीक्षा करें। ऐसे अवसरों पर उन्हें धुरीण लक्ष्मण की वह सारी वीरता विस्मृत हो जाती है, जिसका बखान वनयात्रा के प्रारम्भ में किया था। सुमन्त ने बीहड़ वन की कठिनाईयों को सुनाकर मैथिली को रोकना चाहा था। मैथिली को लगा कि वे निशाचरों और सिंह-व्याघ्रों का नाम लेकर व्यर्थ ही उन्हें डराने की चेष्टा कर रहे हैं। प्रभु के रहते हुए उनकी ओर कौन दृष्टि उठाकर देख सकता है। फिर भी यदि उनके ही मन में कोई हिचकिचाहट है तो उसे दूर करने के लिए वे उन्हें स्मरण दिला देती हैं, 'मेरे

श्री लक्ष्मण चरित्र

धनुर्धर, धीर देवर लक्ष्मण के रहते आपको चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

किन्तु वनपथ में जब उनका वात्सल्य उमड़ता है तब उसमें उनका सारा ऐश्वर्य-ज्ञान तिरोहित हो जाता है। तब वे उनके बाल्यावस्था की दुहाई देती हुई राघव से अनुरोध करती हैं कि वे किसी उंचे स्थान पर चढ़कर लक्ष्मण का नाम पुकारें। प्रभु भी ऐसे अवसरों पर विदेहजा का अनुरोध स्वीकार करते हुए उंचे टीले पर खड़े होकर पुकार उठते हैं।

ऐसे अवसरों पर इन तीनों के मन में जो रस-सरिता प्रवाहित होती है, उनके मिलन से जिस प्रीति-प्रयाग की सृष्टि होती है, उसमें अवगाहन कर किस भावुक हृदय का अन्तःकरण पावन नहीं हो जाता। रात्रि में प्रभु के विश्राम के लिए कुश साथरी का

श्री लक्ष्मण चरित्र

निर्माण भी लक्ष्मण के द्वारा ही होता है और जब मैथिली और राघव उस पर शयन करते हैं तो कहीं दूर सजग प्रहरी के रूप में लक्ष्मण ही बैठे हुए दिखाई देते हैं। उनकी अनुराग-भरी आंखों में निद्रा का प्रवेश वर्जित है। सेवा ही उनका शयन-विश्राम सब कुछ है। सेवा के द्वारा ही उन्हें तृप्ति और शक्ति की उपलब्धि होती है।

विभूति दर्शन

जीवनमुक्त

– 23 –

उत्तरकाशी

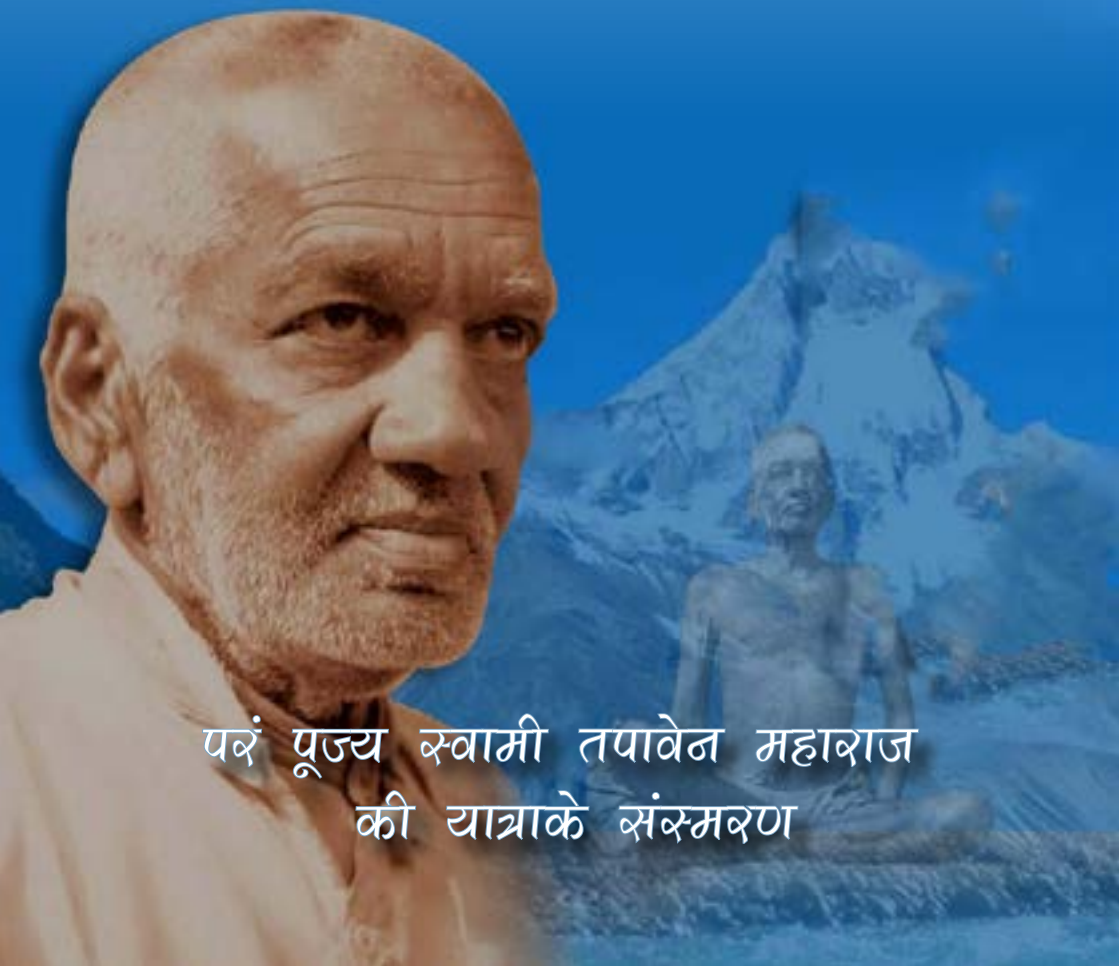

परं पूज्य स्वामी तपोवेन महाराज
की यात्राके संस्मरण

जीवनमुक्त

शोपनहार कहीं और, मनुष्यों की इच्छा-शक्ति का विवरण इस प्रकार देते है:-

"यह कहना कठिन है कि मनुष्य कितना असंतृप्त जीव है। एक विषय के लाभ में उसे कोई तृप्ति मिल जाती है तो उस तृप्ति में मन विराम नहीं पाता, वरन् कई नई इच्छाएं फिर से उठ खड़ी होती हैं - उलटे उसकी इच्छाओं का कोई अंत नही दीखता।"

यही दशा उन मनुष्यों की है जो अपने में विशेषबुद्धि से सम्पन्न तथा विद्याविचक्षण होने का अभिमान रखते हैं। यदि मनुष्य बुद्धि

जीवन्मुक्त

के कारण किसी विशेष सुख का अनुभव करते हैं तो मानसिक दुःखों का विचार करने पर वह निस्सार सिद्ध होता है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं समझना चाहिए कि महासुकृत फल के रूप में शास्त्र जिसकी घोषणा करते हैं वह मानव शरीर एवं उसमें स्थित विशेषबुद्धि सर्वथा अनर्थ के ही कारण है। हमे इस विशेष बुद्धि से इस संसार में महत्तम कार्यों को सिद्ध करना है। बंधनों की माया को नष्ट कर परमार्थ, परमात्म वस्तु को प्राप्त करने का मुख्य साधन है – विशेष बुद्धि । इसमें संदेह नहीं कि ऐसी बुद्धि से युक्त मनुष्य जीवन धन्य है। कहने का मतलब यह है कि यदि माया का तिरस्कार करने के बदले उसमें लीन रहकर अधिक से अधिक विषयों को पाने

जीवन्मुक्त

में और उसके द्वारा बंधन तथा दुःख को बढ़ाने में ही उस विशिष्टबुद्धि का विनियोग किया जाता है तो दूसरे जीवों की तुलना में मनुष्य जाति की विलक्षणता अकिंचित् है। वस्तुतः माया को जीत लेना ही मानव जीवन की मुख्य प्राप्य वस्तु है।

इस प्रकार की प्रचंड प्रतापशालिनी महामाया को जीत लेने के वास्ते माया नियामक, करुणानिधि परमेश्वर की शरणमें आये बिना और कोई रास्ता नही है। साक्षात् परमेश्वर, कामदहन और तपोमूर्ति श्री विश्वनाथ जहां विद्यमान है, वहॉ माया का प्रवेश नही होता। अतः श्रीकाशी में श्रीविश्वनाथ के चरणारविन्दों के आश्रय में रहनेवाले महात्मा लोग महामाया को जीतते हुए ही विराजमान् है। भगवान् के पादों पर दत्तचित्त उन लोगों के पास माया फटकने भी नही पाती। कामीनि और कंचन सपने में भी उनको छू

जीवन्मुक्त

नहीं सकते। नामयश की भ्रांति तक उनके पास नहीं पहुच सकती। रागद्वेषों से भरा और नाना प्रकार की मोहन वस्तुओं से भारान्वित एक जगत् शशविषाण के समान उनके सामने शून्य होता है दुःख में सुख, अनात्मा में आत्मा आदि का भ्रम, उसमें से उत्पन्न आशापाश अथवा मानसिक दुर्बलता – ये सब विश्वनाथ पुरी में घुस नही पाते। माया के जादू माया के तत्त्वों से अनभिज्ञ प्राकृतजनों को छोड़कर महेश्वर के भक्तों पर प्रभाव नहीं डाल सकते। माया कितनी ही प्रचंड क्यों न हो, तो भी परमेश्वरकृपा के वरायुध से युक्त पुरुष उसका सामना कर उसे जीत सकता है। सब शास्त्रोंका सिद्धांत यह है कि माया विजय के लिए ईश्वर की करुणा के सिवा और कोई हथियार नही है।

श्री रामदूतं शरणं प्रपद्ये।।

पौराणिक गाथा

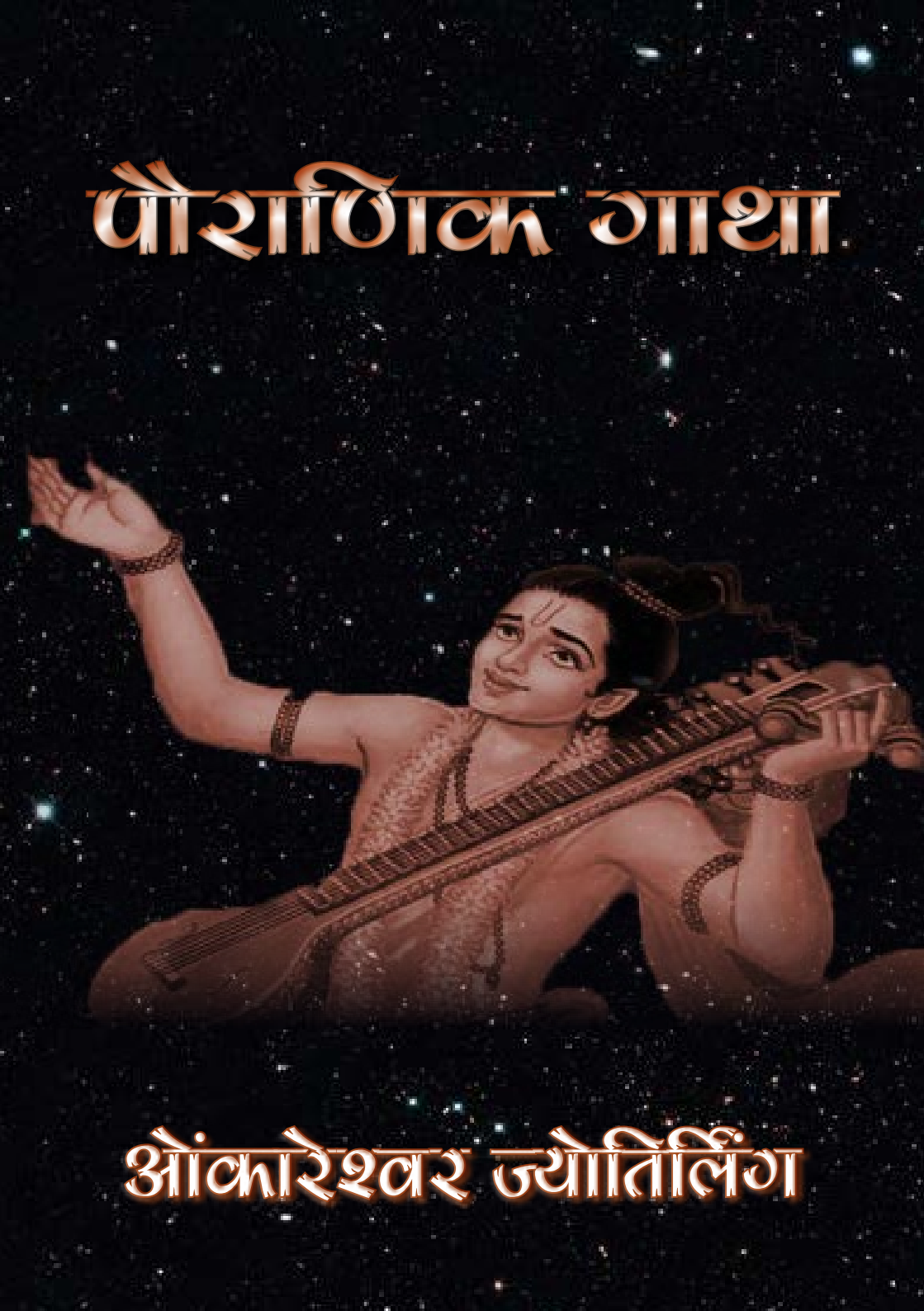

ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग

ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग

ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र में पुण्यसलिला नर्मदा नदी के तटपर स्थित हैं। इसके विषय में वैसे तो अनेकों कथाएं सुनने में आती है। किन्तु शिवपुराण में प्राप्त एक कथा प्रचलित है।

एक बार नारदजी भ्रमण करते हुए विन्ध्याचल पर्वत पर पहुंचे। वहां विन्ध्याचल ने नारदजी का बहुत आदर-सत्कार किया और नारदजी से कहा कि, 'मैं सर्वगुण सम्पन्न हूं। मेरे पास हर प्रकार की सम्पदा है, किसी भी प्रकार की कोई कमी नहीं है।' नारदजी विन्ध्याचल की अभिमानपूर्ण बात सुनकर मुस्कुराने लगें। यह देखकर विन्ध्य ने नारदजी से पूछा कि, आप मुस्कुरा क्यों रहे हैं? क्या आपको मेरे अन्दर कोई कमी दीखाई दे रही

ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग

है? नारदजी ने कहा कि, निश्चित रूप से तुम अनेकों गुणों से सम्पन्न हो, किन्तु तुम सुमेरु से महान नहीं हो सकते। क्योंकि सुमेरु का शिखर तो स्वर्ग को छूता है, और तुम इतने उंचे कभी नहीं उठ सकते हो।' इतना कहकर नारदजी वहां से चले गएं।

नारदजी की बात सुनकर विन्ध्य को बहुत दुःख हुआ। शोकमग्न विन्ध्य ने सोचा कि, महादेवजी एक मात्र ऐसे हैं, जो हमें इष्ट वर प्रदान कर सकते हैं। यह सोचकर वह नर्मदाजी के तट पर पहुंचा और शिवलिंग स्थापित करके महादेवजी की हृदय से आराधना करने लगा।

कई वर्षों तक आराधना करने पर महादेवजी प्रसन्न होकर प्रकट हुएं ओर विन्ध्य से कहा कि, मैं तुम पर प्रसन्न हूं। तुम अपना इष्ट वर मांगो। तब विन्ध्य ने कहा कि, 'हमें ऐसा वर दीजिएं कि हम अपने इष्ट की सिद्धि कर सकें। महादेवजी ने उन्हें उनका इष्ट परदान प्रदान किया। महादेवजी को

ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग

प्रसन्न देखकर समस्त देवता, ऋषि-मुनि, सिद्धगण आदि उस क्षेत्र में पहुंचें। महादेवजी की सब ने स्तुति करते हुए उन्हें ज्योतिरूप में वहीं पर वास करने को कहा। तब शिवलिंग दो भागों में विभाजित हो गया और महादेवजी उसमें ज्योतिरूप से प्रवेश कर गएं। इन दो लिंगेां में से एक ओंकार के नाम से और दूसरा अमलेश्वर नाम से विख्यात है।

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light
in the lives of all with the
Knowledge of Self

आश्रम समाचार

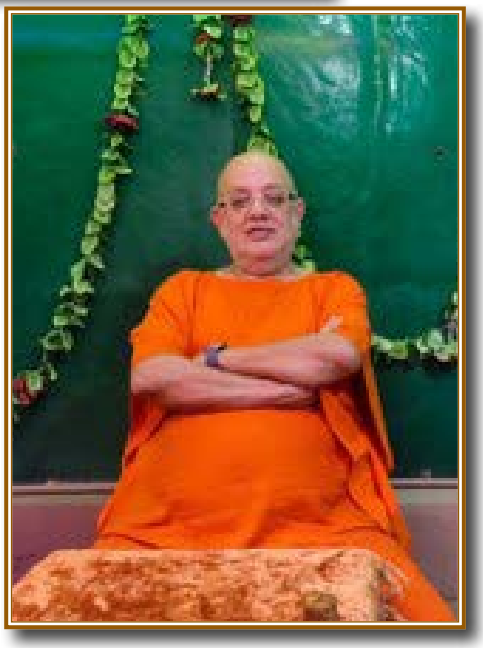

आश्रम समाचार

नव संवत्सर के शुभाशीष

२०७९ - 'नल संवत्सर'

आश्रम समाचार

नव संवत्सर के शुभाशीष

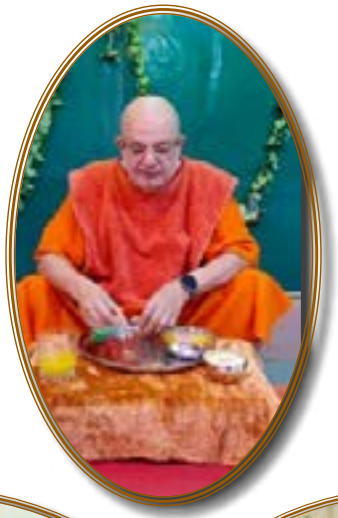

पूजन, भजन एवं भोजन

आश्रम समाचार

श्री रामनवमी उत्सव

आश्रम समाचार

श्री रामनवमी

आश्रम समाचार

श्री रामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये

आश्रम समाचार

श्रीमति रेखा शर्मा द्वारा

जन्मदिन पर शिव अभिषेक

आश्रम समाचार

श्री गंगेश्वर महादेव का शृंगार

आश्रम / मिशन कार्यक्रम

१६ से २० मई २०२२

Holistic Living Trainee's Camp

वेदान्त आश्रम, इन्दौर

पूज्य गुरुजी द्वारा

प्रेरक कहानियां एवं अन्य प्रकाशन

Facebook पर VDS group में नियमित प्रसारण

आश्रम महात्माओं के द्वारा

आत्मबोध (ओनलाईन)

Facebook पर VDS group में नियमित प्रसारण

पूज्य गुरुजी के द्वारा

INTERNET NEWS

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on YouTube Channel

~ Upadesh Saar

~ Atma Bodha Pravachan

~ Sundar Kand Pravachan

~ Prerak Kahaniya

~ Ekshloki Pravachan

~ Sampoorna Gita Pravachan

~ Kathopanishad Pravachan

~ Shiva Mahimna Pravachan

~ Hanuman Chalisa

Internet News

Audio Pravachans

~ Upadesh Saar

~ Prerak Kahaniya

~ Sampoorna Gita Pravachan

~ Atmabodha Lessons

Vedanta Ashram YouTube Channel

Vedanta & Dharma Shastra Group

Monthly eZines

Vedanta Sandesh - May '22

Vedanta Piyush - Apr'22

Visit us online :
Vedanta Mission

Check out earlier issues of :
Vedanta Piyush

Join us on Facebook :
Vedanta & Dharma Shastra Group

Published by:
Vedanta Ashram, Indore

Editor:
Swamini Amitananda Saraswati